International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-6, Issue-3 May- 2019
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

कांगड़ा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

Rekha Sharma
Digamber jain girls inter college, sadar meerut

सार–

प्राकृतिक दृष्टि से समृद्ध व भव्य हिमाचल प्रदेश हरियाली से परिपूर्ण जल स्त्रोतों व संसाधनों से भरपूर ऐसा प्रदेश है जो आज भी पर्यावर्णीय प्रदूषण से बचा हुआ है। क्योंकि यहां के लोक मानस का प्रकृति के साथ सहज व रागात्मक सम्बन्ध है। शाब्दिक दृष्टि से हिमाचल का अर्थ है हिम+अंचल अर्थात् हिम–पर्वत अथवा हिमालय, जो उच्चता, धवलता तथा पावनता का प्रतीक है। इसका लौकिक भावार्थ यह भी लिया जाता है कि हिम के आँचल में बसा हुआ प्रदेश ही हिमाचल है। सांस्कृतिक दृष्टि से इसे देव–भूमि, देवस्थल तथा ऋषियों की तपोस्थली भी कहा जाता है।

प्रस्तावना–

हिमाचल भारत के अत्यन्त सुन्दर राज्यों में से एक माना जाता है तथा इसको पहाड़ी राज्य के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। हिमाचल प्रदेश अपनी स्थानीय परम्पराओं तथा सांस्कृतिक सौन्दर्य के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है। भारत का उत्तरी सीमांत प्रदेश होने के कारण इस राज्य का अपना एक विशेष स्थान है। हिमाचल प्रदेश के 12 जिले हैं।

"यह प्रदेश जम्मू काश्मीर, लद्दाख, पंजाब, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश से घिरा है। शिमला, सोलन, नाहन, रेणुका, डलहौजी, चम्बा, भरमौर, धर्मशाला, काँगड़ा, पालमपुर, ऊना, मण्डी, कुल्लू, बिलासपुर, हमीरपुर तथा मनाली इसके मुख्य नगर हैं। खजियार, रेणुका, डलझील, मणिमहेश, रिवालसर, भागसू नाग, मनीकर्ण, तत्वानी, व्यास कुंड, पौंग बांध आदि स्थान प्राकृतिक झीलों तथा झरनों के लिए लोकप्रिय हैं, कुफरी, नारकंडा, चायल आदि स्थान बर्फ के खेलों के लिए प्रसिद्ध हैं।" मन्दिरों में श्री चामुण्डा नन्दिकेश्वर, छिन्नमस्तिका चिन्तपुर्णी माता, ब्रजेश्वरी माता, ज्वाला माता, बाबा बालक नाथ, नैणा देवी आदि प्रसिद्ध मन्दिर आते हैं। हर वर्ष लाखों श्रद्धालु यहां आकर दर्शन करके अपनी मनोतियां मनाते हैं। अध्यात्मिक दृष्टि से भी यह प्रदेश एक विशेष ऊंचाई पर आसीन है।

हिमाचल में पूर्वकाल से ही हिन्दू एवं बौद्ध धर्मों की समृद्ध परम्पराएं प्रचलित रही हैं और अब भी विद्यमान हैं। यह स्थान अनेक ऋषि–मुनियों की तपोस्थली रही है। इनमें वेद व्यास, परशुराम इत्यादि के नाम लिए जा सकते हैं। अपनी अनूठी रमणीयता तथा सांस्कृतिक परम्परा के फलस्वरूप ही ऋषि–महाऋषियों ने इस स्थल को उपयोगी जानकर यहां की मिट्टी को पवित्र किया है। यहां आश्रम बनाकर तपस्या की

जिसके परिणामस्वरूप समूचा भारत हिमाचल प्रदेश को आज देव–भूमि के नाम से जानता है। हिमाचल ग्रामों का प्रदेश है। यहां की अधिकतर जनता ग्रामों में ही निवास करती है। यहां पर अनेक धर्मों तथा जातियों के लोग निवास करते हैं। सभी क्षेत्रों तथा जातियों के संस्कार, परम्पराएं तथा रीति–रिवाज़ एक दूसरे से मिलते–जुलते ही हैं। यह प्रदेश विभिन्न त्यौहारों, उत्सवों तथा संस्कारों के लिए लोकप्रिय हैं।

हिमाचल प्रदेश का अतीत मानव सभ्यता की सांस्कृतिक धरोहर है। यह धरोहर हमारे समक्ष, शिलालेखों, प्राचीन मन्दिरों, किलों और पुस्तकों के रूप में विद्यमान है। "पाणिनी ग्रन्थों, जो सातवीं शताब्दी से चौथी शताब्दी के मध्य रचे गए थे, में समृद्धशाली राज्यों–त्रिगर्त (काँगड़ा), कुलिंद (सिरमौर), कुलूत (कुल्लू), युगोधर (बिलासपुर–नालागढ़) गविदिका (चम्बा) तथा औडम्बर (पठानकोट) का जिक्र मिलता है।"
महाभारत के अनुसार और पांचवी सदी ई. पू. जैसा कि पाणिनी द्वारा भी प्रमाणित किया जा चुका है कि इस क्षेत्र के मुख्य जनपद त्रिगर्त, औदम्बर, कुलूत और कुलिन्द आदि थे। चन्द्रगुप्त मौर्य जिनका काल 324–300 ई. पू. माना जाता है मौर्य शासन के संस्थापक थे। इन्होंने हिमालय के लोगों के साथ अपने राज्य को स्थापित करने का समझौता किया था। उस समय इस प्रदेश का भौगोलिक रूप–स्वरूप आज से भिन्न था।

आधुनिक हिमाचल प्रदेश एक इकाई के रूप में 15 अप्रैल 1948 को अस्तित्व में आया। बिलासपुर रियासत जो पहले एक स्वतन्त्र रियासत थी, इसको सन् 1954 में हिमाचल में विलय कर दिया गया। सन् 1966 को विशाल हिमाचल का गठन हुआ जिसमें पंजाब के क्षेत्र काँगड़ा, कुल्लू, लाहौल स्पिति और शिमला ज़िले को हिमाचल प्रदेश में शामिल कर लिया तथा 12 ज़िलों से गठित कर इस प्रदेश को 25 जनवरी 1971 के दिन पूर्ण राजस्व प्राप्त हो गया। हिमाचल प्रदेश को प्रकृति ने लाखों वरदान दिए हैं। इस प्रदेश की जलवायु भौगोलिक स्थिति, पहाड़ों की विशालकाय चोटियों से निकलती मैदानों की ओर दौड़ती नागिन सी नदियों और असंख्य उछल–कूद करते विशाल घने जंगल जिनकी शाखाएं सदैव मन्द समीर के झोंकों में नृत्य करती दिखाई पड़ती हैं। यहां के भोले–भाले लोग, उनकी संस्कृति मेले, त्यौहार, पूजित देवी–देवता कुछ ऐसे आकर्षण हैं जो सदैव देश–विदेश के लोगों को अपनी ओर खींचते रहते हैं।

"यह अकाट्य सत्य है कि वर्तमान काँगड़ा की सभ्यता, संस्कृति, लोक विश्वासों, लोक मान्यताओं, लोकाचारों तथा लोक संस्कारों में अनेक वर्शों की गतानुगतिकता से चली आ रही वृहद संस्कृति समाई हुई है जिसका अपना विशुद अंकटक इतिहास है।"

काँगड़ा जनपद का प्रत्येक वर्ग अपनी आस्थाओं, विश्वासों, परंपराओं, मान्यताओं तथा पूजा–अर्चना रीति विधानों से बंधा है। सभी धर्मों के लोग एक दूसरे से धार्मिक समारोहों, पूजा–जातराओं में सम्मिलित होते हैं। इसी हिमाचल प्रदेश का अब एक ज़िला है काँगड़ा। इसकी प्राकृतिक उपमा, भौगोलिक सुन्दरता, पहाड़, बन, नदियां, सर–सरिताएं लोक जीवन के विविध रंग–रूप ही यहां पर परंपरित लोक संगीत के

प्रणेता एवं आधार तथा परंपरा वाहक हैं। प्रस्तुत अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में विवेच्य क्षेत्र की ऐसी कुछ विशिष्टताओं का संक्षेप में वर्णन करना सम्यक होगा ताकि एतिहासिक व पौराणिक परिदृश्य में इस क्षेत्र का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके।

पौराणिकता

विभिन्न लोकोक्तियों, लोकगाथाओं तथा मिथकों में हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जनपद के सन्दर्भ सूत्र प्राचीन, धार्मिक ग्रन्थों में खोजे जा सकते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में काँगड़ा को त्रिगर्त, नगरकोट, कानगढ़, भीमकोट आदि के नामों से जाना जाता रहा है।

"काँगड़ा जनपद सम्बन्धी अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक तथा लौकिक आख्यान प्रचलित हैं। पद्मपुराण में उपलब्ध एक उपाख्यान के अनुसार, ''विष्णु ने अजयी दैत्य' जालन्धर का रूप धारण कर उसकी धर्मपत्नी बृन्दा को काबू करना चाहा। कालान्तर शिव ने दैत्य का सिर काट दिया, परन्तु ब्रह्मा के वरदान के कारण उसका सिर पुनः धड़ से जुड़ जाता है। पुनर्जीवन को समाप्त करने हेतु शिव ने उसे भूमि में गाड़ दिया। उसके मृतक शरीर ने 48 कोस अथवा 64 मील का क्षेत्र घेरा, इसी की पीठ पर जालन्धर नगर बसा था।'' "पश्चिमी हिमालय पर प्रथम प्रमाणिक शोध करने वाले कनिघम महोदय ने भी लिखा है कि 1846 में जब वह काँगड़ा में आया तो उसने लोगों के मुख से यह कहानी सुनी थी कि जालन्धर दैत्य का सिर व्यास नदी के उत्तर में, मुँह ज्वालामुखी की तरफ, उसका शरीर व्यास और सतलुज के मध्य विस्तृत क्षेत्र में फैला था। उसकी पीठ जालंधर जिले के साथ उसके पांव मुल्तान की ओर दवाए गये थे।"

कहा जाता है कि काँगड़ा जनपद की तीन प्रमुख नदियां व्यास, सतलुज और रावी के मध्यवर्ती भू–भाग को त्रिगर्त प्रदेश की संज्ञा दी गई है। "काँगड़ा का एक प्राचीन नाम 'त्रिगर्त' भी है। महापण्डित राहुल जी के अनुसार त्रिगर्त को तीन नदियों वाणगंगा, कुरली और न्यूगल का पर्याय माना है। प्रसिद्ध यात्री मूरक्राफ्ट ने व्यास की निम्न उपत्यका जो कि काँगड़ा का मुख्य स्थान है, को त्रिगर्त बतलाया है। विद्वानों का मत भी है कि मैदानी क्षेत्रों की राजधानी जालन्धर थी और पर्वतीय क्षेत्र की राजधानी त्रिगर्त या 'त्रिगढ़' कहलाती थी।

काँगड़ा शब्द को लेकर कुछ विद्वान मानते हैं कि यहाँ पर बने विशाल किले का आकार कान जैसा है इसलिए इस स्थान को 'कानगढ़' और उसके अपभ्रंश रूप में 'कांगड़ा' कहा जाने लगा।

"कुछ विद्वानों के अनुसार 'क' (सिर) गिरा (गढ़ा) महादेव के त्रिशूल से कटकर गिरा 'क' और 'गिरा' मिलकर 'कंगिरा' शब्द बना। र,ल,ड़ का परस्पर मेल होता है। तीनों अक्षर एक दूसरे के बदले बोले जा सकते हैं। कंगिरा में 'रा' के स्थान पर ड़ा करने पर काँगड़ा बना।"

काँगड़ा के लिए 'सुशर्मपुर' नाम भी आता है। काँगड़ा के शासक महाभारतकालीन सुशर्मन के वंशज थे। महमूद गजनवी ने काँगड़ा के विशाल किले पर आक्रमण कर उसे लूटा था। किले की विशालता देखकर इसे अपने विवरणों में 'भीमकोट' का नाम दिया है। समय के साथ–साथ अन्य नाम प्राचीन नाम ऐतिहासिक के रह गए और काँगड़ा नाम ही प्रसिद्ध हो गया। काँगड़ा के मैदानी भाग धीरे–धीरे कट गए और पंजाब में मिल गए और केवल पहाड़ी क्षेत्रों पर कटोच राजवंशीय राजाओं का अधिकार रहा। वर्तमान में हिमाचल के ऊना, काँगड़ा और हमीरपुर के जिले प्राचीन काँगड़ा जनपद के ही अंग थे।

इसी प्रकार कांगड़ा के लिए जो अन्य शब्द प्रचलित हैं उनका विवरण यूं दिया जा सकता है– ''त्रिगध'' शब्द ''त्रिगर्त'' का अपभ्रंश है, का प्रयोग भी इसके लिए मिलता है।'' बाणगंगा, कुराली तथा न्युगल नदियां हरिपुर के पास डाडासीबा का किला के सामने मिलती हैं। तीनों नदियों का यह संगम ''त्रगाद'' कहलाता है जो त्रिगर्ध का अपभ्रंश है। ''सुशर्मपुर भी कांगड़ा का पुराना नाम था, सुशर्मन जो कांगड़ा के प्राचीन राजा थे, को महाभारत कालीन माना गया है।'' कांगड़ा को कुछ इतिहासकारों ने नगरकोट भी कहा है तो कुछ ने ''भीमकोट'' नाम का व्यवहार किया है।

किवदन्तियों के आधार पर जालन्धर नाथ के कान पर गढ़ा होने के कारण इसे ''कानगढ़'' भी कहा जाता है। अन्य मत के अनुसार, ''कांगड़ा जालन्धर राज्य का मुख्य नगर होने के कारण भी इसे क्षेत्र का नाम मुख्य नगर के आधार पर कांगड़ा होना अधिक उपयुक्त लगता है।

प्राचीनता

कांगड़ा जनपद अति प्राचीन है। संस्कृत के ग्रन्थों में यह उल्लेख बार–बार मिलता है कि आर्य पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में ही सबसे पहले आकर रहने लगे थे।

ऐसा प्रोफेसर राइस डेविस के शब्दों से पता चलता है, ''हिमालय का काश्मीर और उसका पूर्वी क्षेत्र वह भू–भाग है जहाँ आर्यों ने सबसे पहले घर बसाया था।''

कृष्ण युग में शक्ति एवं राक्षसों के मध्य हुए युद्धों का वर्णन भी मिलता है। एक सन्दर्भ के अनुसार, ''युद्ध में देवी के अत्यंत थक जाने पर उनके माथे से पसीना गिर पड़ा, जिससे चन्द्रामृत मिला था इस दोनों तत्वों के संयोग से एक अद्वितीय मानव की उत्पत्ति हुई, जो भूमि चन्द्र कटोच के नाम से विख्यात हुआ। इसी के वंशज सुशर्मन ने महाभारत के युद्ध में दुर्योधन का साथ दिया था।

कर्नल हारकोर्ट तथा जैक्न्स का कहना है कि, ''जब हमारे पूर्वज आदिम अवस्था में थे और रोम के राज्य

की स्थापना भी नहीं हुई थी, उस समय काँगड़ा में कटोश वंश का सुव्यवस्थित राज्य था।''

कुछ इतिहासकारों ने इसे ''राजपूताना के राज्य परिवारों से भी पुराना माना है।'' इसलिए यहां की राजवंश परम्परा, यहां के मन्दिर, यहां के गढ़–किले तथा मन्दिरों में प्रस्तुत प्रशस्तियां इस तथ्य की गवाही देती हैं कि वास्तव में यह ही एक प्राचीन जनपद रहा है। इस स्थान को महमूद गज़नवी (1009), तैमूर लंग (1395), मुहम्मद तुगलक (1337), फिरोजशाह तुगलक (1361 तथा 1385), सूरी वंश (1530 से 1556), मुगल साम्राज्य (1556 से 1752) आक्रान्त बाहरी शक्तियां कांगड़ा किला पर आक्रमणकारी एवं अधिकारी रूप में आकर रही हैं। एक लम्बे अरसे तक संघर्ष करने के बाद 1775 (ए.डी.) संसार चन्द राज्यासीन हुए। मुगलों और सिक्खों से संघर्ष करने के पश्चात् 1776 में उन्होंने कांगड़ा किले पर अधिकार कर लिया।"

यह युग निश्चय ही कांगड़ा के इतिहास में स्वर्ण युग के नाम से जाना जाता है। इस काल में कलाओं का पर्याप्त परिमार्जन हुआ व जनकल्याण के साधन जैसे जलमार्ग, मन्दिर, तालाब, बाग–बगीचे इत्यादि भी उन्नत हुए। बैजनाथ का शिव मन्दिर, ज्वालामुखी मन्दिर, काँगड़ा का ब्रजेश्वरी मन्दिर व राधाकृष्ण के मन्दिरों की मुरम्मत भी इसी युग में हुई। यह काँगड़ा का सबसे स्वर्णिम युग था। महाराजा संसारचन्द ने इस काल में अपनी शक्ति से पंजाब के मैदानी इलाकों में सीमा बढ़ाने का प्रयत्न किया परन्तु महाराजा रणजीत सिंह की शक्ति के आगे वे परास्त हुए।

अपने बल व शक्ति प्रदर्शन से उन्होंने कहलूर का कुछ भाग जीता। परन्तु कहलूर के राजा ने अन्य पहाड़ी राजाओं के साथ मिलकर काँगड़ा पर आक्रमण कर दिया। 1809 में राजा संसार चन्द पराजित हुए व उन्हें काँगड़ा के किले में शरण लेनी पड़ी। चार वर्ष के लम्बे संघर्ष के बाद काँगड़ा राज्य की अर्थव्यवस्था टूट गई। असमर्थ होकर राजा संसारचन्द ने महाराज रणजीत सिंह से सहायता मांगी। बदले में काँगड़ा जिला तथा ज्वालामुखी के 66 गाँव (1809) देने पड़े। परिणामस्वरूप संसारचन्द की सार्वभौमिकता समाप्त हो गई और महाराजा संसारचन्द के स्वर्ण युग का अन्त हो गया।

सामाजिक एवं पारिवारिक परिवेश

हिमाचल प्रदेश के लोक मानस की विशेषता उसकी सरल व निर्द्वन्द जीवन पद्धति है। उनकी प्रथम शिक्षा स्थली प्रकृति है। प्रकृति से उन्होंने जीवन मूल्य ग्रहण किये। लोगों में दुरागामी विसंगतियां नहीं हैं। उन पर वैदिक व आर्य संस्कृति का प्रभाव देखा जा सकता है। कांगड़ा अंचल के लगभग 50 कि.मी. की दूरी पर परिवेश भिन्न हो जाता है। पर्यावरणीय व मानवीय प्रवृतियां बदल जाती हैं। मानव स्वभाव ही नहीं भाषा व बोली में भी थोड़ा अन्तर दिखने लगता है। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती बाड़ी है। अधिकांश पुरूष फौज की नौकरी करते हैं। महिलाएं पहले नौकरी कम करती थीं परन्तु अब स्थिति बदल

गई है। अब वे भी नौकरी इत्यादि में रूचि लेने लगी हैं। यहां के गांव परस्पर जुड़े हैं और दुख दर्द तथा प्रसन्नता में एक दूसरे का हाथ बंटाते हैं।

"यहां की गद्दी व गुजर जनजातियां भेड़–बकरी, घोड़े तथा खच्चर पालती हैं। वे एक स्थान से लेकर दूसरे स्थान में अपने पशुओं को लेकर घूमते हैं। इनकी जीवन शैली कठिन होती है। कांगड़ा के कुछ स्थानों जैसे स्लेटगोदाम व खनियारा में सलेट निकालने का कारोबार भी है। गांवों में घरों की व्यवस्था जाति के आधार पर होती है। विभिन्न जातियों के लोग अवश्य एक गांव में होते हैं। जो परस्पर जीवन जीने में सहायक होते हैं।

क्षत्रिय, ब्राह्मण व तथाकथित निम्न जातियों के लोग अलग–अलग मुहल्ला बनाकर बसते हैं।"

यद्यपि गांव विशेष में विभिन्न समुदाओं के लोग रहते हैं परन्तु उनमें परस्पर सदभाव की भावना बनी रहती है। क्योंकि वे जानते हैं कि उन्हें एक दूसरे की आवश्यकता रहती है। जमींदार या जागीरदार भूमिहीनों को काम करने के लिए अपनी जमीन दे देते हैं। बदले में फसल का तीसरा या चौथा हिस्सा स्वयं ले लेते हैं। गांव के साथ लगते हाट–बाजारों के व्यवसायी सूद या महाजन लोग इन गांवों में कुआं व बावड़ियों का निर्माण करते हैं। यद्यपि जब से पंचायतों के पास पर्याप्त धनराशि आने लगी है और गांव–सुधार के काम सुचारू रूप से चलने लगे हैं। लोगों और सामाजिक संस्थाओं ने धर्मार्थ कार्य कम कर दिये हैं।

"गांव के बीच या आस–पास देवी–देवताओं के मन्दिर मिलते हैं। किसी न किसी स्थानीय देवता का मन्दिर अवश्य होता है। पति के लिए सती हो गई स्त्रियों की देहरियां मिलती हैं। जहां नव–वधुओं से पूजा करवाई जाती है। राम, कृष्ण, शिव या शनि मन्दिर तो सामान्यता हर जगह मिल जाते हैं।"

कुछ समय पहले तक ग्रामीण अपनी स्थिति से संतुष्ट थे व खुशहाल थे परन्तु दूरदर्शन, इंटरनेट व मोबाईल के प्रचार–प्रसार से बाजार गांव में पसरने लगा है। गांव में भी महत्वकांक्षाएं बढ़ रही हैं। बेहतर जीवन की खोज में लोग गांव से पलायन करने लगे हैं। एक सीमा तक वे भी सही हैं क्योंकि आज भी वहां शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार की पर्याप्त सुविधाएं नहीं हैं।

कांगड़ा में संयुक्त परिवार प्रथा

यद्यपि कांगड़ा में किसी समय संयुक्त परिवार प्रथा थी जिसके अन्तर्गत किसी व्यक्ति विशेष के यदि चार पुत्र हैं तो विवाह उपरान्त वे पुत्र एक ही घर में रहेंगे और उनका एक ही चूल्हा होगा। इस प्रथा के कुछ लाभ थे। परिवार में यदि कोई सदस्य आर्थिक दृष्टि से कमजोर हो तो उसका भी गुजारा हो जाता था। दुःख तकलीफ में भी भावात्मक सम्बल मिलता था। परन्तु धीरे–धीरे शहरों का प्रभाव गांवों में पड़ा और

एकल परिवार जीवन पद्धति स्थापित हुई। इसका कारण संयुक्त परिवार की कुछ सीमाएं रहा होगा, क्योंकि संयुक्त परिवार में सभी को एक ही प्रकार की सुख–सुविधाएं भोगते हुए रहना होता है। इसलिए अतिरिक्त परिश्रम की प्रेरणा नहीं मिलती। व्यक्ति स्वभाव से ही स्वार्थी होता है। परन्तु धीरे–धीरे सामाजिक परिवेश में यह स्वार्थ कुछ ज्यादा ही प्रबल हो गया इसलिए गांव में भी वो पहले जैसी स्थिति नहीं रही। यह समय खासतौर पर संकट का समय है। परिवारों में विभाजन हो रहे हैं और सम्पति के झगड़े अदालत में हैं।

रीति–रिवाज : संस्कार

गांव एक कुटुम्ब के समान होता है। यहां जन्म से लेकर मृत्यु तक कई संस्कार व अनुष्ठान मनाए जाते हैं। लोकगीतों में जिनकी पूर्ण विधि निरूपित है। ग्रामीण महिलाएं शिशु जन्म, जन्म दिवस, मुण्डन, यज्ञोपवीत व विवाह संस्कार विधि–विधान से निभाती हैं और अवसर विशेष को उत्सव का रूप देती हैं। जिनमें परिवार के सभी सदस्यों को शामिल कर लिया जाता है। आज भी घरों में मीठे पकवानों का प्रचलन है जैसे बबरू, गुणे, गुजियां व अंकुरित चने बांटने की प्रथा आज भी कायम है।

पुत्र जन्म तो खास आनन्ददायी होता है। अड़ोस–पड़ोस की स्त्रियां बधाइयाँ, भ्याइयाँ, जन्म के गीत तथा सोहर गाती हैं। शिशु की जन्मतिथि, नक्षत्र, बार तथा ग्रहों को देखकर ब्राह्मण, पंडित, ज्योतिषी आदि के द्वारा जन्म लग्न तैयार कर भविष्यवाणी की जाती है। नीच ग्रहों को सन्तुष्ट करने के लिए ''तोल्ला'' दान तथा ग्रह पूजन आदि कार्य कराए जाते हैं। सातवें महीने में बच्चे को अन्न खिलाने का संस्कार (खीरपू) किया जाता है। बड़े बर्तन में (बांस से बनी चंगेर में) अलग–अलग प्रकार की चीज़ें रख दी जाती हैं (पुस्तक, कलम, दराती, सोने की वस्तु आदि)। शिशु जिस वस्तु को उठाएगा वह बड़ा होकर वैसा ही कार्य करेगा। ऐसा यहां के लोगों का मानना है। इसी तरह नामकरण भी किया जाता है। ब्राह्मण परिवारों में यज्ञोपवीत संस्कार को आवश्यक माना गया है।

''विवाह हर्षोल्लास का अवसर समझा जाता है। उचित वर की तलाश के लिए माता–पिता, सगे–सम्बन्धी कई सूत्रों द्वारा प्रयत्नशील रहते हैं।''

निष्कर्ष–

कांगड़ा की लोक गाथाएं बहुत विशेष हैं, ये निशब्द क्रान्तियां हैं। हैरानी होती है कि वर्षों पहले पानी की सिंचाई इत्यादि के लिए कुल्ह, बावड़ी व कुंए आदि के निर्माण हेतू बलि देने की प्रथा थी और उसके लिए चुनाव केवल स्त्री का होता था। इन सच्चाईयों पर गीत रचे गए हैं परन्तु रचनाकारों ने उन कृत्यों का औचित्य नहीं सिद्ध किया है। बल्कि सांकेतिक ढंग से उसका विरोध उनमें विद्यमान है। स्त्री उत्पीड़न व

शोषण सामने आया है। चाहे कुल्ह हो, धोबण हो या कण्डी की गाथा हो, जिनमें स्त्रियों के साथ ज़्यादती या शोषण हुआ था। उनकी मृत्यु हो गई, उनकी बलि दे दी गई या वे आत्मघात के लिए विवश हो गई थीं। लेकिन उसके बाद भी वे इन लोक गाथाओं के माध्यम से जीवन्त हैं और ये गाथाएं जब गाई जाती हैं तो एक तरह से अनाम होकर या नहीं होकर भी जो अन्याय व अमानवीय व्यवहार उन्होंने सहा वह शब्द–शब्द अभिव्यक्त हुआ है उनके माध्यम से इनमें क्रांति की संभावनाएं विद्यमान हैं इसे सामने लाने का लक्ष्य है ताकि आधुनिक पीढ़ी यह जान सके कि समाज विशेष रूप से लोक मानस पर कितनी गहरी पकड़ थी लोक रचनाकारों की। वे रचनाधर्मी लोक साहित्यकार, भविष्य दृष्टा थे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

- सत्येन्द्र, डॉ. लोक साहित्य विज्ञान आगरा, शिवलाल अग्रवाल एण्ड सन्ज़, 1961
- ठाकुर, डॉ. सूरत, हिमाचल प्रदेश का जनजातीय लोक संगीत, शिवांक प्रकाशन, 2019
- व्यथित' डॉ. गौतम शर्मा, हिमाचल प्रदेश लोक संस्कृति और साहित्य निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, ए–5 ग्रीन पार्क नई दिल्ली–110016
- व्यथित' डॉ. गौतम शर्मा, झूमे धरती गाए लोक, प्रथम संस्करण, काँगड़ा, कृष्णा ब्रदर्स, 1977
- डॉ. गौतम शर्मा, काँगड़ा इतिहास, संस्कृति एवं विकास, दिल्ली, जय श्री प्रकाशन, 1983
- डॉ. गौतम शर्मा, महके आंगन–झूमे गांव, काँगड़ा शीला प्रकाशन, राज मन्दिर नेरटी, 1990
- शर्मा डॉ. मीनाक्षी, लोक गीतों में कृष्ण का स्वरूप, नई दिल्ली : तक्षशिला प्रकाशन, 1989
- शर्मा डॉ. मीनाक्षी, हिमाचली कृष्ण काव्य, काँगड़ा : शीला प्रकाशन, राज मन्दिर नेरटी, 1990
- शर्मा डॉ. मनोरमा, लोक मानस के सुरीले स्वर हिमाचली लोकगीत संगीत विभाग, हि.प्र.वि.वि. शिमला, 1993
- 'अरूण' डॉ. रमेश शर्मा, कांगड़ी संस्कार गीतों की सामाजिक व्याख्या 'रश्मि प्रकाशन' गुग्गा सलोह, तहसील पालमपुर काँगड़ा, 1984
- वर्मा सावित्री देवी, पारिवारिक समस्याएं, आत्मा राम एण्ड सन्ज, दिल्ली–6
- मिट्टू हरिकृष्ण, 'नीरज' रामदयाल, शर्मा सत्येन्द्र, हिमाचल के लोक गीत, प्रथम संस्करण, मार्च 1998
- 'कुलश्रेष्ठ' आचार्य डॉ. जगदीश सहाय संगीत शास्त्र, संगीत कार्यालय हाथरस–204101 (यू.पी.)
- पाण्डेय डा. राजवली : हिन्दू संस्कार, हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, जयपुर, वि. सं. 2017
- शुक्ल राम चन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास (काशी : नगरी प्रचारिणी सभा, सं. 2035 वि.)